ISSN: 2249-894X IMPACT FACTOR : 3.8014 (UIF) VOLUME - 6 | ISSUE - 8 | MAY - 2017

REVIEW OF RESEARCH

मिथिला के सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास

डॉ. भुवनेश्वर कुमार भारती
बी० ए०, एम० ए०, पी–एच० डी०
इतिहास विभाग , ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वर नगर, दरभंगा.

भूमिका

मिथिला के सामाजिक संरचना के इतिहास में यहाँ की सर्वश्रेष्ठ सामाजिक व्यवस्था कुलीनवाद का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है। मिथिला के सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास में प्राचीन काल से हीं रूढ़िवादिता एवं धार्मिक कट्टरता परिलक्षित हो रहे थे। देश के अन्य हिस्से की भांति मिथिला में भी राजनीतिक एवं सामाजिक उथल–पुथल एवं परिवर्तन परिलक्षित होते रहे। परन्तु यहाँ की सामाजिक कट्टरता एवं रूढ़िवादिता में बहुत कम अंतर दृष्टिगोचर हुए। मिथिला के समाज में मूलतः ब्राह्मण जाति के लोग अपने रक्त को समाज के दूसरे वर्गों की अपेक्षा अधिक पवित्र एवं श्रेष्ठ समझते थे। इस प्रकार के सामाजिक व्यवस्था को मिथिला के राजा हरिसिंह देव के समय और अधिक सुदृढ़ एवं मजबुत किया गया। मिथिला में कुलीन प्रथा के जरिये नियमानुसार वैवाहिक संबंध स्थापित करने में उच्च एवं नीच की व्यवस्था की गई तथा एक वर्ग के साथ दूसरे वर्ग के संबंध के लिए नियम बनाये गये जिसका अनुपालन मिथिला के समाज में कड़ाई के साथ पीछे के शताब्दियों में होता रहा। ऐसा कहा गया है कि मिथिला में कुलीन प्रथा का जन्म मैथिल समाज में व्याप्त उस समाज की रक्त शुद्धता को सुरक्षित रखने के विचार से किया गया था। कुलीन प्रथा के द्वारा मिथिला के समाज में एक और नये वर्ग को जन्म दिया गया। जो बाद में पंजीकार अथवा घटक के नाम से प्रसिद्ध हुए। कुलीन प्रथा के अन्तर्गत पंजीकारों को मैथिल परिवारों के विस्तृत वंशावली रखनी होती थी तथा पंजीकार वंशावली के आधार पर विवाह संबंधी नियमों का प्रयोग करते थे। इस प्रकार मिथिला के राजा हरिसिंह देव ने अपने शासन काल के दौरान मिथिला के समाज में वैज्ञानिक पद्धति से पंजीबद्ध करने का आदेश निर्गत किया जिसके आधार पर मिथिला के पंजीकारों के पास मैथिल समाज के सदस्यों को अपने पूर्वजों के नाम, पता तथा संबंध अंकन करवाना पड़ता था। पंजीकारों का स्थान समाज में गोत्र, वंश जाति तथा विवाह संबंध में निर्णय देने वाला निबंधक तथा वंशावलियों को लेखबद्ध कर उन्हें सुरक्षित रखने वाला विश्वसनीय संरक्षक माना गया। इसमें दो मत नहीं कि मिथिला में पंजी प्रबंध चलाने के पीछे उच्च भावना की प्रेरणा छिपी हुई थी।

चौदहवीं शताब्दी में मैथिल समाज के गठन में किंचित परिवर्तन दृष्टिगत होता है। उस परिवर्तन ने समाज को प्रगतिशील बनाने के स्थान पर उसे और भी बदतर बना दिया। मिथिला में कर्णाट राजा हरिसिंह देव के समय जिस सामाजिक व्यवस्था की नींव रखी गयी, वैसी सामाजिक व्यवस्था, रीति–रिवाज तथा आचार–विचार बाद के शताब्दियों में भी लागू रही।

समाज वर्णाश्रम धर्म पर आधारित था। इस वर्णाश्रम धर्म के नियम में शिथिलता नहीं आया, बल्कि विदेशी और विधर्मी मुसलमानों के आतंक से यह अधिक कठोर हो गया। सामाजिक कट्टरता इतनी बढ़ गयी कि सामाजिक नियम को धर्म की संज्ञा दी गयी और किसका छुआ हुआ पानी ग्रहण करें, किसका छुआ हुआ भोजन करें, किसके स्पर्श मात्र से स्नान करें, किसके स्पर्श मात्र से हड्डी पर्यन्त अपवित्र हो जाती है आदि वस्तुएँ धर्म कही गयी। राजा हरिसिंह देव के शासन काल में मिथिला के ब्राह्मण एवं कायस्थ समाज में कुलीन प्रथा को आरंभ किया गया। पश्चात पंजी प्रबंध का प्रचार मिथिला से आरंभ होकर बंगाल और आसाम तक हुआ। राजा हरिसिंह देव की आज्ञा से मैथिल ब्राह्मण समाज का चार विभागों में वर्गीकरण हुआ। इस वर्गीकरण के अनुसार ब्राह्मणों के चार विभाग क्रमशः श्रोतिय, योग्य, पंजीबद्ध तथा जयवार के नाम से प्रसिद्ध हुए। मैथिल ब्राह्मणों में श्रोतिय का स्थान उस परिवारों को प्राप्त हुआ, जिनके सदस्य अपना समय सुर्योदय से अस्त तक केवल अग्नि–होत्र, यज्ञ–वाग, पूजा–पाठ आदि वैदिक एवं स्मार्त कर्मों में व्यतीत करते थे। कुलीन प्रथा में उन्हें सर्वोच्च स्थान प्राप्त हुआ। श्रोतियों के बाद दूसरा स्थान योग्यों को प्राप्त हुआ। पंजीबद्धों का तीसरा स्थान था तथा जयवारों का चौथा। कहा जाता है कि राजा हरिसिंह देव ने उपर्युक्त प्रकार का वर्गीकरण जनक जैसे दार्शनिक नृपति की मिथिला संसार के समक्ष धार्मिक आचरण में उच्च तथा आदर्श बनाने के विचार से किया था। इस कुलीन प्रथा के नियमानुसार वैवाहिक संबंध स्थापित करने में उच्च एवं नीच की व्यवस्था की गयी, और एक वर्ग के साथ दूसरे वर्ग के संबंध के लिए नियम बनाये गये, जिसका पालन कड़ाई के साथ पीछे के शताब्दियों में भी होता रहा।

राजा हरिसिंह देव के विवाह संबंधी नियमों ने ब्राह्मण समाज में एक और नये वर्ग को जन्म दिया। वह वर्ग पंजीकार अथवा घटक के नाम से प्रसिद्ध हुआ। हरिसिंह देव ने नियम बना दिया था कि विवाह संबंध को अंतिम रूप देने के पूर्व संबंध करने वालों को पंजीकारों से इस बात का प्रमाण पत्र प्राप्त करना होगा कि वह संबंध विवाह–निषेध–नियमों के अन्तर्गत नहीं आता है। पंजीकारों को मैथिल परिवारों की विस्तृत वंशावली रखनी पड़ती थी। किस वंश के साथ किस वंश का विवाह नहीं होना चाहिए, इसका निर्णय पंजीकारों को करना पड़ता था। कहा जाता है कि कुलीन प्रथा का मैथिल समाज में समावेश उस समाज की रक्त शुद्धता को सुरक्षित रखने के विचार से किया गया था। इसी कारण पंजीकारों के यथा मैथिल समाज के सदस्यों को अपने पूर्वजों के नाम, धाम तथा संबंध का अंकन करवाना पड़ता था। पंजीकारों का स्थान समाज में गोत्र, वंश, जाति तथा विवाह के संबंध में निर्णय देने वाले निबंधक तथा वंशावलियों को लेखबद्ध कर उन्हें सुरक्षित रखने वाला विश्वसनीय संरक्षक का था।

पंजी व्यवस्था के आरंभ के संबंध में एक अनुश्रति

पंजी व्यवस्था के आरंभ के संबंध में एक अनुश्रति मिथिला में प्रचलित है। कहा जाता है कि किसी मैथिल ब्राह्मण पंडित हरिनाथ उपाध्याय ने भूल से किसी ऐसे कुल की स्त्री के साथ विवाह किया, जिसके साथ वैवाहिक संबंध करना शास्त्रीय नियमानुसार उसके वंश के व्यक्ति के लिए उचित नहीं था। एक बार उसकी स्त्री पर नीच व्यक्ति के साथ व्यभिचार करने की आशंका हुई। वह शुद्ध चरित्रा थी। अपने को निर्दोष सिद्ध करने हेतु अग्नि–परीक्षा के लिए प्रस्तुत हुई। उसने यह कहकर कि ''नाहम् चंडाल गामिनी'' जलती हुई आग को अपने हाथपर रखा। उसका हाथ जलने लगा। उसे पूर्ण विश्वास था कि वह शुद्ध चरित्रा थी। अतः उसने पुनः प्रार्थना की कि उसके कहने में पहली अग्नि परीक्षा के समय भूल हुई थी, इसलिए फिर से कठिन अग्नि परीक्षा में सम्मिलित होकर अपनी चरित्र शुद्धता को प्रमाणित करने की आज्ञा और अवसर उसको मिलना आवश्यक हे। उसे इस हेतु अवसर दिया गया। इस बार उसने अग्नि को हाथ में लेकर कहा कि ''नाहे स्वपत्यतिरिक्त चंडाल गामिनी'' अर्थात मैंने अपने पतिदेव के अतिरिक्त किसी अन्य नीच व्यक्ति के साथ शारीरिक संबंध नहीं किया है। इस बार वह परीक्षा में सफल हुई। अनल से इस समय उसके हाथ दग्ध नहीं हुए। पूर्वकाल में पवित्रता प्रमाणित करने हेतु ऐसी परीक्षा की जाती थी। इसका प्रमाण प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। इससे उनके पतिदेव को बड़ी ग्लानि हुई। जाँच करने पर पता चला कि उसके पतिदेव ही अपवित्र थे। क्योंकि उन्होंने एक ऐसी नारी के साथ विवाह किया था, जिसके साथ वैवाहिक संबंध स्थापित करना शास्त्रों की आज्ञा के अनुसार वर्जित था। इस घटना ने मिथिला में हलचल मचा दी। यह भी कहा जाता है कि पंडित हरिनाथ उपाध्याय को बिना छानबीन किए विवाह कर लेने के कारण लज्जा और हार्दिक दुख हुआ। भविष्य में ऐसा भूल पुनः किसी से न हो इसके

लिए उक्त पंडित ने मैथिल ब्राह्मणों एवं कायस्थों की संस्कृत में वंशावली 1313 ई0 में प्रस्तुत किया। पंजी प्रबंध के प्रस्तुत होने के पश्चात समय–समय पर उसकी वंशावलियों में पीछे आने वाले सन्तानों के नाम तथा उनके संबंधों का विवरण अंकित किया जाने लगा, जो क्रम न्यूनाधिक रूप में अद्यपर्यन्त चालू है। राजा हरिसिंह देव ने इस प्रकार की पंजी प्रबंध को राजकीय छत्र–छाया देकर प्रोत्साहित किया तथा मिथिला में विवाह शास्त्रानुकूल संपन्न हो इसके हेतु अधीक्षण की व्यवस्था शासन की ओर से की गयी। पंजीकारों को किसी प्रस्तावित वैवाहिक संबंध को जाँच कर उसे शास्त्रानुकूल विहित घोषित करने तथा उसके विषय में प्रमाण देने का पूर्ण अधिकार दिया गया। उसके बिना उस काल में न कोई संबंध की वार्ता पक्की हो सकती थी और न विवाह यज्ञ ही सम्पन्न किया जा सकता था। पंजी प्रबंधानुसार पुत्री के विवाह के इच्छुक श्रोतिय वंशीय पिता को अधिकार प्राप्त पंजीकार से ''अधिकार माला'' प्राप्त करनी पड़ती थी, जिसमें ऐसे व्यक्तियों के नाम, उनके पिता और पितामहों के नामों के साथ रखते थे, जिनके साथ कन्या का शास्त्रीय नियमों के अनुसार कोई संबंध नहीं होता था, तथा उनमें से किसी के साथ संबंध कन्या का वैवाहिक संबंध स्थापित करने में किसी प्रकार की शास्त्रोक्त बाधा नहीं समझी जाती थी। पश्चात कन्या का पिता अथवा अभिभावक पंजीकार द्वारा प्रमाणित सूची में से एक अथवा अधिक वरों को पसन्द कर उनमें से एक के साथ विवाह करने की आज्ञा राजा से प्राप्त करने के हेतु अपने द्वारा चुने गये नामों को शासन के समक्ष रखते थे और उससे विवाह करने का स्वीकृति पत्र प्राप्त करने के बाद ही विवाह किया जाता था। राजा जाति के प्रश्न में ब्राह्मण कुल को प्राप्त हुआ, जो निकट अतीत तक बना हुआ था।

श्रोतियों के अतिरिक्त योग्य, पंजीबद्ध तथा जयवारों के वैवाहिक संबंध को अंतिम रूप देने का अधिकार राजा के द्वारा पंजीकारों को प्राप्त था और उनको आदेश दिया गया था कि वे शास्त्रोक्त नियमों तथा स्थानीय व्यवहारों को ध्यान में रखते हुए विवाह या सम्पन्न करावें। ब्राह्मणों की भांति मिथिला के कायस्थों में भी कुलीन प्रथा का प्रचार हो चुका था। उनका भी विभाजन दो दलों में किया गया था। एक को कुलीन अथवा उच्च वंशोद्भव माना जाता था तथा दूसरे को गृहस्थ अथवा साधारण कुल में उत्पन्न। उन्हें भी कायस्थ पंजीकारों से विवाह प्रमाण पत्र प्राप्त कर विवाह करना पड़ता था। इस प्रकार की वंशावली विवाह कार्य करने के हेतु केवल ब्राह्मणों तथा कायस्थों के लिए ही आवश्यक नहीं था, प्रत्यूत क्षत्रिय परिवारों में भी इस प्रथा का प्रचार था। कुलीन प्रथा चलाने वालों की इस प्रथा को चलाने की प्रेरणा की जड़ में उच्च भावना था, इसमें संदेह नहीं है। उन्होंने सामाजिक व्यवस्था को स्थिर रखने एवं मानव जीवन को धार्मिक एवं भद्र बनाने के विचार से इस प्रथा का आरंभ तथा प्रचार–प्रसार किया था। जिससे मनुष्यों को अपने आदर्श कर्त्तव्य द्वारा उँचे उठने की प्रेरणा प्रतियोगिता के रूप में ही सही, अन्तरात्मा से प्राप्त हो सके। पर वे बातें हुई नहीं। केवल तथाकथित रक्त की शुद्धता को बनाये रखना, इस प्रथा का अन्तोगत्वा ध्येय समझा जाने लगा। इसके प्रवर्तकों ने इसका प्रवर्तन समाज हित की दृष्टि से किया था, परन्तु परिणाम प्रतिकूल हुआ। हरिसिंह देव द्वारा प्रचारित यह व्यवस्था आलोच्य अवधि में भी लागू रही।

जातिवाद में भी वर्गवाद का जन्म हुआ। खान–पान तथा शादी–विवाह में कट्टरता एवं संकीर्णता का समावेश हुआ। जातिगत द्वेष सर्वत्र फैलना आरंभ हुआ। उच्च एवं नीच की भावना ने समाज में विश्रृंखलता उत्पन्न कर दी। उच्च कुलोद्भवता तथा उच्च वर्ण के भाव ने समाज के एक अंग को मदान्ध बना दिया था। उसके प्रति उप–जातिवालां के हृदय में द्वोष की भावना का उत्पन्न होना स्वाभाविक था। अतः अपने को कुलीन समझने वालों एवं साधारण कोटि के मनुष्यों के साथ उप–जातिवालों का संघर्ष आरंभ हुआ, जिसका प्रतिफल समाज और देश के लिए घातक सिद्ध हुआ। समाज अनेक छोटे–छोटे युद्धरत शिविरों में बँट गया। जिनका नित्य का कार्य एक दूसरे को नीचा दिखाना तथा पद–दलित करना हो गया। विवाह के क्षेत्र को उक्त प्रथा ने संकुचित बना दिया। एक उप–विभाग के सदस्य को उसी विभाग में वैवाहिक संबंध करना अनिवार्य बना दिया गया। वैसा न करने से उसे जाति से बहिष्कृत होने की आशंका और भय बना रहता था। वैवाहिक संबंध में अर्थ प्राप्ति की भावना का जनम इस प्रकार के जाति उप–विभाग ने दिया। उच्च कुल की कन्या के लिए साधारण कुल के वर से पर्याप्त रूपये की माँग होने लगी और उसी तरह उच्च कुल के वर के साथ साधारण कुल की कन्या का विवाह करने के लिए कन्या पक्ष से रूपये की वर पक्ष की ओर से माँग होने लगी। इस प्रकार विवाह संस्कार, संस्कार न रहकर व्यापार बन गया। शास्त्रों की आज्ञा केवल संगोत्र, सपिंड तथा गोतिया में वैवाहिक संबंध नहीं करने की थी। घटकों और पंजीकारों को विवाह वार्ता को अन्तिम रूप देने की प्रधानता थी। पश्चात्

वैवाहिक संबंध तय करने की एक नया विधि और रीति निकल पड़ी। उसको लोग ''सभा गाछी विवाह'' कहने लगे। सभा गाछी मधुबनी नगर से आठ किलोमीटर दूरी पर सौराठ ग्राम में है, जहाँ सम्पूर्ण मिथिला के प्रत्येक भाग से बहुसंख्यक विवाह के इच्छुक मैथिल ब्राह्मण तथा उनके सहयोगी निर्धारित तिथियों की अवधि में एकत्र होकर विवाह–वार्ता तय करते हैं। सभा गाछी में जाकर विवाह संबंधी वार्ता करने की प्रथा आज भी प्रचलित है। सभा गाछी में प्रायः पंजीकार ही वैवाहिक संबंध स्थित करते थे। उनकी समाज में प्रतिष्ठा थी। वे सत्यनिष्ठ होते थे। पर शनैः शनैः उनमें भी अनैतिकता का प्रवेश हुआ। उनका नाम बिचौलियों का हो गया। पारिश्रमिक प्राप्त कर वर–कन्या की समानता तथा उनके भावी दामपत्य जीवन पर बिना विचार किये अर्थ–लाभ के लोभ से वे अनमेल विवाह भी तय कराने लगे, जिसका परिणाम घातक हुआ। प्राचीन मिथिला के पवित्र नाम एवं विमल यश में इससे कलंक कालिमा पुत गयी। पंजीकार व्यवसायी बन गये। पहले पंजीकार अध्ययनशील एवं बहुमुखी विद्या के ज्ञात होते थे। पश्चात् उनके वंशज विद्या तथा योग्यता के अभाव में भी पंजीकार वंश में उत्पन्न होने के कारण पंजीकार पद पर प्रतिष्ठित होने लगे।

पंजी प्रबंध के चलन से समाज पंजीकार तथा घटकों की भी चल पड़ी। विद्यापति भी वर्णाश्रम व्यवस्था के साथ–साथ पंजी प्रबंध के समर्थक ही नहीं वरन् इस व्यवस्था में आस्था रखने वाले थे। ज्योतिरीश्वर के ''स्त्रीक चरित्र अइसन दुर्लभ्य'' एवं स्त्रीक चरित्र अहमन दारूण'' कथन से ही स्त्री समाज की दयनीय अथवा तथा वरूण कथा का पता चल जाता है। विद्यापति ने भी स्त्री को ''अलप गेआनी'' कहा है। समाज में सती प्रथा का भी प्रचलन था। इस सती प्रथा का साक्ष्य रामकृष्ण चौधरी ने यह कहते हुए दिया है– ''मेरे पास अकबरकालीन एक दस्तावेज है जिसमें इसका प्रमाण मिलता है। भवसिंह की दो रानियां वाग्मती तट पर सती हुई थी। समाज में बेमेल विवाह भी होता था, बहुत कम उम्र की लड़कियां भी व्याही जाती थी। गृहस्थ रत्नाकर, मदन पारिजात और लिखनावली में विवाह संबंधी विधान और स्त्रीधन का भी वर्णन मिलता है। स्त्री धन को मैथिल निबंधकारों ने ''सौदायिक और यौतुक'' की संज्ञा दी है। विद्यापति ने भी अपने ''विभाग सार'' में ''दाम भाग'' का प्रतिपादन किया है। विवाह को समाज में एक बहुत बड़ा एवं महत्वपूर्ण झिमाना गया और यह विवाह यज्ञा संबंधी धारणा विद्यापति युग से आजतक मिथिला में परंपरया अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है। घर समाज एवं परिवार के अतिरिक्त और भी कई प्रकार की स्त्रियों का वर्णन विद्यापति की पुरूष परीक्षा में प्राप्त होता है। कीर्तिलता में तथा वर्ण रत्नाकर में वैश्याओं का भी वर्णन मिलता है। अशिष्ट और अभद्र औरतों को कुलटा कहा जाता था जो आज भी है। प्रत्येक पेशा जाति में बदल चुका था और जातिगत नियम में उस हेतु भी कठोरता आ गई थी। ''चण्डेश्वर के अनुसार ब्राह्मण कृषि कर्म भी कर सकते थे यदि वे उपज का छठा भाग राजा को कर के रूप में दे दिया करें। मध्य युग में खेती गृहस्थी और व्यापार में तो ब्राह्मण आ ही गये थे और साथ ही साथ पाकशास्त्र में वे लोग जुट चुके थे। एक अच्छे शूद्र के यहां जमीन गाय इत्यादि प्राप्त करने के लिए ब्राह्मण भोजन ग्रहण कर सकते थे। शूद्र ब्राह्मणों को चावल बनाने के लिए भी दिया करते थे। ये ारी की सारी व्यवस्थाएं आज भी यथावत् ही दृष्टिगत होते है। ग्राम्य जीवन में भाग लेनेवाले व्यक्तियों में उन दिनों भी खेतिहर के अतिरिक्त चमार, सोनार लोहार, जोलहा, कुम्हार, तमोली, वेलदार आदि महत्वपूर्ण माने जाते थे। पेशा एवं जाति के अनुकूल ही पैदावार एवं उत्पादन भी हो पाता था। और ऐसे उत्पादन करनेवाले निम्नवर्गीय लोगों को उपरी वर्ग के लोग उल्टे हेय दृष्टि से भी देखते थे। व्यापारी लोग दूर–दूर देशों में जाकर अपना व्यापार करते थे। महाजन सूद पर रूपया कर्ज लगाता था। वैश्व व्यापार के अतिरिक्त कृषि कार्य में भी लग गये थे। सूदखोरी व्यवस्था से बहुत सारे लोग लाभ उठाते थे। सामाजिक उत्सवों के अवसर पर कर्ज लेकर भी लोग ज्यादे से ज्यादा खर्च करते थे। शूद्र उन दिनों अपने शरीर को बंधक रखकर कर्ज लेते थे, तथा बहिया बनकर इस कर्ज का सधान करते थे। समाज में निम्न स्तर के लोगों को अछूत समझा एवं कहा जाता था। मंद जातीय के अन्तर्गत तेली, तांती, तीवर, तुरिया, धानुक, हाड़ी, गोह, चमार, सुड़ी, नागर, डोम आदि की गिनती की जाती थी, जिनमें डोम, निषाद, कापालिक आदि को अछूत कहा जाता था। समाज में मृत्य एवं दास के दो अलग अलग वर्ग थे। मालिक के समक्ष अपने को सदा के लिए समर्पित कर देने वाला गुलाम कहलाता था। इन गुलामों का हिसाब रखनेवाला व्यक्ति मजमुअदार कहलाते थे, जो आज मजुमदा हो गये है। शूद्रों में बहुसंख्यक लोग गुलामी की अवस्था में ही रहते थे और उन्हीं में से कुछ बहिया और बधुआ मजदूर होते थे। शिक्षा केंद्र के रूप में भी मिथिला की ऐतिहासिक स्थान थी। खासकर नव्य न्याय के अध्ययनार्थ दूर–दूर के जिज्ञासु यहां आया करते थे। यहां के इस नव्य–न्याय की मान्यता अन्यत्र भी होने लगी थी। पक्षधर मिश्र के शिष्य पं. रघुनाथ

शिरोमणि ने अपने गुरू की आज्ञा प्राप्त कर बंगाल के नदियां नवद्वीप में नव्य न्याय का केंद्र स्थापित किया था। न्याय मीमांसा में तो इसे अद्वितीयता ही प्राप्त थी। महारानी विश्वास देवी ने 1400 मीमांसकों को बैठक बुलायी थी। यह भी शास्त्र प्रसिद्ध ही है। विद्या का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं था जिस पर यहां अध्ययन अध्यापन न होता रहा हो। साहित्य, विज्ञान, गणित, तर्कशास्त्र, कामशास्त्र, व्याकरण, अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र आदि विषयों मं असंख्य पुस्तकों की रचना हुई। शब्द विद्या, शिल्प स्थान विद्या, चिकित्सा विद्या, हेतु विद्या, अध्यात्म विद्या, काम विद्या आदि का अध्यन अध्यापन होता था। परिवार नियोजन के कतिपय उपाय ज्योतिरीश्वर ठाकुर के ''पंच सायक'' ग्रंथ में मिलते हैं। पुस्तक लिखने तथा पांडुलिपि तैयार करने की भी प्रथा थी। तालपत्रों पर पुस्तकों की रचना होती थी। विद्वानों का जीवन एवं समाज में सर्वश्रेष्ट सम्मान था, विद्यार्थी का जीवन अनुशासित होता था तंत्र भी ख्यात था। बहुत सार तांत्रिक विद्वान भी थे, वरन् मिथिला को तंत्र का केंद्र भी माना जाता था। उदयन की किरणावली से तो यह भी ज्ञात होता है कि यहां के लोग समय और काल का भी अध्ययन करते थे। नैयायिकों ने अणु एवं परमाणु का भी अध्ययन प्रस्तुत किया था। ''नित्य'' परिमंडम–परिमंडलमेव पारिमांडल्यम्'' के द्वारा अणु की महत्ता प्रतिपादित करते हुए शंकर मिश्र ने गति का भी विश्लेषण किया और स्पन्दन आरोहन वायु, नाद आदि का भी। विद्यापति के ही पुरूष परीक्षा में वनस्पति शास्त्र तथा मवेशी विज्ञान का वर्णन भी प्राप्त होता है। वर्ण रत्नाकर में विष वैद्य, नरवैद्य, गज वैद्य, अश्व वैद्य आदि का उल्लेख हुआ है। रेखागणित, ज्योतिष आदि विद्याओं का भी अध्ययन किया जाता था। विद्यापति की ''भू–परिक्रमा'' उनके भौगोलिक ज्ञान एवं भूगोल विषयक रूचि का ही परिचायक है जिसमें पौराणिक महत्वों के साथ 45 ग्रामों एवं नगरों का वर्णन हुआ है। ज्योतिरीश्वर के वर्ण रत्नाकर तथा वाचस्पति कृत तीर्थलता एवं तीर्थ चिंतामणि में मिथिला ही क्या भारत में प्रसिद्ध तीर्थ स्वान, पर्वत, नदियां एवं धार्मिक स्थानों का पौराणिक महत्व प्रतिपादन के साथ वर्णन हुआ है। विद्यापति के ही ग्रंथों में तिरहुत, गया, मगध, चंपारण, नेपाल के अतिरिक्त गोरखपुर, द्वारका, दंडकारण्य, कान्यकुव्ज, अयोध्या, प्रयाग, मथुरा, गोकुल, वृन्दावन, मोरंग आदि का वर्णन प्राप्त होता है। साहित्य स्रष्टाओं तथा निबंधकारों में भी श्रीदत्त उपाध्याय, चण्डेश्वर, हरिनाथ उपाध्याय, मदन सिंह देव, रूद्रधर, वाचस्पति मिश्र, रामदत्त, पद्मनाथ, इन्द्रपति, प्रेमनिधि, लक्ष्मीपति, शंकर मिश्र, वर्द्धमान आदि विद्यापति के अलावे हुए। चण्डेश्वर ने अपने ग्रंथों में वर्ण–धर्म, आश्रम धर्म, वर्णाश्रम धर्म, गुण धर्म, निमित्त धर्म आदि का विस्तृत विश्लेषण करते हुए धर्म को 1. रूप रूप, 2. फल, 3. प्रमाण और 4. निमित्त चार भागों में बांटा। बंगाल के प्रसिद्ध निबंधकार पं. रघुनंदन तो मिथिला के विद्यापति, रूद्रधर, वाचस्पति आदि के उनकी विद्या तथा रचनाओं से ऋणि थे ही, किंतु इनके अतिरिक्त भी उस युग में मिथिला स्कूल की बड़ी प्रधानता थी और बंगाल के सभी निबंधकार मैथिल निबंधकारों के मत को महत्व देते थे।

धर्म एवं दर्शन के क्षेत्र में विद्यापति के काल में भक्ति

धर्म एवं दर्शन के क्षेत्र में भी विद्यापति के काल में भक्ति की प्रधानता थी। भाग्यवाद का सिद्धांत अपने पूर्ण विकसित अस्तित्व पर आ गया था। गरीब भी अपनी गरीबी के लिए अपने भाग्य को कोसता था, अमीर भी अपने भाग्य पर मनमौजी काटते थे। भाग्यवाद की इस मान्यता ने सामान्य लोगों को भी यह विश्वास दिला दिया था कि पूर्वजन्म का फल भी अवश्यमेव भोग्य है। फलतः परंपरावाद और भी जड़ जमाता चला गया। पाप पुण्य स्वर्ग नरक मोक्ष आदि की भावना मानवों में व्याप्त हो गई। मोक्ष के लिए क्रियाशील होने, तथा वर्तमान जीवन के कष्टों के अगल जीवन में निवारणार्थ सचेष्टता का कर्म प्रतिपादित किया गया। फलतः अपना कर्म भोग समझकर राजा के अन्याय अत्याचार को भी लोग भोगने के अभ्यस्त हो गये। सुख–दुख को भी भाग्यफल जानकर संतुष्ट रहने लगे। मोक्ष के लिए साधन जुटाने के क्रम में भक्ति भावना बढ़ती गई। खासकर वैष्णवों ने भक्ति के सिद्धांत को काफी बल दिया। मिथिला में यों शिव और शक्ति की प्रधानता ही रही, परंतु विष्णु ने भी जनप्रियता प्राप्त की, विष्णु ने विभिन्न रूपों की मूर्तियां बनाकर पूजा होने लगी। सभी देवी देवताओं के साथ–साथ विष्णु की भी समान रूप से पूजा की जाती थी तथा समान आस्था दीखलाई जाती थी। इन पूजा परंपराओं का साक्ष्य पुरातात्विक अवशेष तथा निबंधकारों की रचनाएं एवं तत्कालीन प्राप्त पाण्डुलिपियां है। उमापति के पारिजात हरण में कृष्ण लीला का वर्णन मिलता है किंतु बिहार में विद्यापति के पदों के माध्यम से कृष्ण लीला का प्रचार एवं प्रचन हुआ।

सारांश

विद्यापति की कथा कविस्तार पूर्व राग, दौत्य, अभिसार, संभोग, मिलन बिरह और भावसम्मिलन के माध्यम से हुआ है। ''हे सखी मानुष जनम अनूप'' के द्वारा मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ सत्य है इसकी घोषणा भी विद्यापति ने ही की, और मनुष्य के आत्मबल को बढ़ावा मिला। प्रेम को सूफी एवं वैष्णवों ने समान रूप में देखा। राधाकृष्ण चौधरी ने विद्यापति के संबंध में लिखते हुए लिखा है– ''बिना किसी पूर्वाग्रह के यदि कहा जाए कि विद्यापति वैष्णव संप्रदाय और भक्ति के प्रथम कवि थे तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। उपर्युक्त वर्णित सारे के सारे तत्व आज भी अल्पाधिकता में मिथिला में प्राप्त है। ''मिथिला के लोग स्वभाव से परंपरावादी और कट्टर रहे हैं सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से विद्यापति का युग मात्र मिथिला के लिए ही नहीं अपितु समस्त उत्तर भारत के लिए महत्वपूर्ण था।

संदर्भ श्रोतः–

1. डॉ. ठाकुर उपेन्द्र, हिस्ट्री ऑफ मिथिला–1959– मिथिला इंस्टीच्यूट ग्रंथमाला–3 स्टडीज नं. 1
2. भी.आर.आर. पीक्षित उ.ए.मेकडोनेल एण्ड ए.बी. कीथ, 1912, दि पुराण इन्डेक्स वैदिक इन्डेक्स ऑफ नेम एण्ड सब्जेक्ट्स, मद्रास लंडन, 1951–52
3. डॉ. जयकांत मिश्र, –1950– इन्ट्रोडक्सन टू दी फौल्क लिटरेचर ऑफ मिथिला, यूनिवर्सिटी ऑफ इलाहाबाद स्टडीज इंगलिश सेक्सना
4. डॉ. ठाकुर उपेन्द्र, 1959, हिस्ट्री ऑफ मिथिला, मिथिला इंस्टीच्यूट ग्रंथमाला–3 स्टडीज नं. 1
5. मुखरजी आर.के., 1947, ऐन्सियन्ट इंडियन एजुकेशन, मैकमिलन एण्ड कम्पनी.
6. ग्रीयर्सन जी.ए., ऐन इन्ट्रोडक्शन टू मैथिली लैंग्वेज–
7. दास आर.एल., मिथिला दर्पण–
8. मिश्रा जे.के., ए हिस्ट्री ऑफ लिट्रेचर वा.–1
9. झा मुकुन्द, मिथिला भाषामय इतिहास–म.म.